दीनदयाल उपाध्याय
व्यक्ति और विचार

मा० स० गोलवलकर
दत्तोपन्त ठेंगड़ी

जागृति प्रकाशन
एफ-१०६, सैक्टर-२७, नोएडा २०१३०१

दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति और विचार

मा ० स ० गोलवलकर (श्री गुरुजी)

दत्तोपन्त ठेंगडी

जागृति प्रकाशन एफ- १०९, सेक्टर-२७, नोएडा- २०१३०१

प्रकाशक :

जागृति प्रकाशन

एफ-१०९, सेक्टर- २७, नोएडा- २०१३०१

जिला गाजियाबाद (उ०प्र०)

प्रथम संस्करण : सितम्बर १९८५

मूल्य : २.०० रूपया

प्रकाशन संख्या – ७

मुद्रक : दुर्गा मुद्रणालय

सुभाष पार्क एक्सटेन्सन, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

पं० दीनदयाल उपाध्याय : जीवन यात्रा

१९१६--२५ सितम्बर (आश्विन कृष्ण त्रयोदशी सम्वत् १९७३ विक्रमी) सोमवार को मथुरा जिले के ग्राम नगला चन्द्रभान में जन्म ।

१९१९--पिता भगवती प्रसाद का स्वर्गवास ।

१९२४--माँ रामप्यारी का स्वर्गवास ।

१९२५--मामा राधारमण के यहाँ गंगापुर सिटी (राजस्थान) में प्राथमिक शाला में प्रवेश ।

१९२९--कोटा में कक्षा पांच में प्रवेश ।

१९३२--राजगढ़ में कक्षा आठ में प्रदेश ।

१९३४--छोटे भाई शिवदयाल का देहान्त । सीकर में दसवीं कक्षा में प्रवेश ।

१९३५--दसवीं की परीक्षा में अजमेर बोर्ड में सर्वप्रथम । बोर्ड द्वारा स्वर्ण पदक । महाराजा सीकर द्वारा भी स्वर्ण पदक तथा छात्रवृत्ति । महाविद्यालयीन शिक्षा बिरला कॉलेज पिलानी में प्रारम्भ ।

१९३७--इण्टरमीडियेट बोर्ड में सर्वप्रथम । सभी विषयों में विशेष योग्यता । बोर्ड द्वारा स्वर्ण पदक । घनश्यामदास बिरला द्वारा स्वर्ण पदक व मासिक छात्रवृत्ति । सनातन धर्म कॉलेज कानपुर में बी. ए. में प्रवेश । राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ में प्रवेश ।

१९३९--बी. ए. की परी क्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण । सेण्ट जॉन कॉलेज आगरा में एम. ए. हेतु प्रवेश । संध शिक्षा वर्ग का प्रथम वर्ष किया । आगरा मे संघ कार्य आरम्भ ।

१९४१--रुग्ण ममेरी बहन की सेवा में व्यस्त रहने के कारण एम. ए. की परीक्षा नहीं दे पाये । प्रयाग में बी. टी. में प्रवेश ।

१९४२-- संघ शिक्षा वर्ग का द्वितीय वर्ष । राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक होकर लखीमपुर खीरी गये ।

१९४५--उत्तर प्रदेश के सहप्रान्त प्रचारक नियुक्त ।

१९४७--राष्ट्रधर्म प्रकाशन की लखनऊ में स्थापना ।

१९४८-४९--संघ से प्रतिबन्ध हटाने के लिए सम्पूर्ण उत्तर प्रदेश में सत्याग्रह संचालन का दायित्व । 'पांचजन्य' पर प्रतिबन्ध लगने पर क्रमश: 'हिमालय' तथा 'राष्ट्रभक्त' पत्रों का प्रकाशन ।

१९५१--२१ सितम्बर को उत्तर प्रदेश में प्रादेशिक जनसंघ की स्थापना । १ ९५३-- १ जनवरी को कानपुर अधिवेशन में जनसंघ के अखिल भारतीय महामन्त्री नियुक्त । कश्मीर सत्याग्रह का संचालन ।

१९६३ --जौनपुर से लोकसभा का चुनाव लड़े । भारत मैत्री समिति के निमन्त्रण पर सितम्बर-अक्टूबर में अमरीका यात्रा ।

१९६४--'एकात्म मानववाद' का सर्वप्रथम ग्वालियर की प्रतिनिधि सभा में प्रस्तुतीकरण ।

१९६५-- १६ अगस्त को कच्छ समझौते के विरुद्ध पाँच लाख लोगों का संसद भवन पर प्रदर्शन ।

१९६७--भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष ।

१९६८-- ११ फरवरी को मुगल सराय स्टेशन पर जीवन-यात्रा की समाप्ति ।

एकनिष्ठ कार्यकर्त्ता - श्री गुरुजी

(११ फरवरी १९६८ को प० पू० श्री गुरुजी जौनपुर में थे । वहाँ कार्यकर्ता शिविर था । दीनदयालजी की संदिग्धा-वस्था में मृत्यु का समाचार जैसे ही उन्हें मिला, वे तुरन्त काशी पहुँच गये । काशी में दीनदयालजी के शव को पोस्ट मार्टम के लिए लाया गया था । जैसे ही उनकी दृष्टि शव पर पड़ी, उनकी आँखें छलछला आयीं और रुँधे कण्ठ से निकला --"अरे, इसे क्या हो गया है ।" पोस्ट मार्टम के बाद जब शव को दिल्ली ले जाने के लिए विमान में रखा गया तो उस समय भी गुरुजी विमान की सीढ़ियाँ चढ़ कर अन्दर गये, अपने दोनों हाथ दीन-दयाल जी के मुँह के ऊपर से छाती तक लाते हुये अपने नेत्रों से लगाए । इस प्रकार उन्होंने तीन बार किया ।काशी से लौटते ही (११ फरवरी सायंकाल को) जौनपुर शिविर में उन्होंने स्वयंसेवकों के सम्मुख जो भाव व्यक्त किए,वे यहाँ अविकल रूप से दिये जा रहे हैं ।)

मन में बड़ा विषाद छा गया है । क्या हुआ होगा और किस प्रकार यह मर्मवेधी घटना घटी होगी, इसका तो पता लगाने वाले लगायेंगे । कुछ भी पता लगे, अपने संघ का एकनिष्ठ कार्यकर्त्ता उठ गया । जीवन के यौवन में, आगे अनेक प्रकार से कार्य करने की उनकी क्षमता बढ़ती ही जा रही थी । परन्तु अब उस समृद्ध क्षमता का लाभ प्राप्त होने की सम्भावना नहीं रही ।

दो-तीन दिन पहले मैं मिला था । बड़े आनन्द और प्रेम से बातचीत हुई थी । मैंने पूछा था, "तुम्हारा आगे का क्या कार्यक्रम है? कहां मिलोगे?" उन्होंने कहा कि मैं पटना जा रहा हूँ । कुछ दिन बाद कानपुर में मिलूँगा । पटना पहुँचने के पूर्व ही यह काण्ड हो गया ।

आदर्श स्वयंसेवक

बाल्यकाल अर्थात् छात्रजीवन से ही स्वयंसेवक के नाते जो अपने कर्त्तव्य का बोध प्राप्त कर लेते हैं और समग्र जीवन की शक्ति संघ-कार्यार्थ ही समर्पित करने वाले जो थोड़े से लोग रहते हैं, उनमे उनका बड़ा स्थान था । संघ के स्वयंसेवक से अपेक्षा रहती है कि वह अपने अन्दर स्वयंसेवक के सब गुण कायम रखे, अपने संगठन का ध्यान रखे, तथा उसके भिन्न- भिन्न कार्यक्रमों की महत्ता को हृदय में जाग्रत रखकर उनमें सम्मिलित होता रहे और उसे यदि अन्य कोई काम भी करने के लिए दिया जाए तो वह उसे परिश्रम से निभाये, चाहे वह कार्य किसी भी क्षेत्र का क्यों न हो । उनको (दीनदयालजी) राजनीतिक क्षेत्र में काम करने के लिए कहा गया और उन्होंने वह किया । कितनी योग्यता से किया, उसकी कल्पना कुछ लोगों को होगी और कुछ लोगों को नहीं होगी, परन्तु यदि यह कहा जाए कि अब भारतीय जनसंघ के नाम से देश में जो राजनीतिक संगठन खड़ा है, वह उनकी योजनाबद्ध परिश्रमशीलता का ही परिणाम है, तो अत्युक्ति न होगी । जनसंघ में बहुत से लोग बोलने वाले रहे, बहुत से दौड़-धूप करने वाले रहे, बहुत से केवल शोभा देने वाले रहे, परन्तु नीव के पहले पत्थर से काम प्रारम्भ करके इतनी ऊंची मर्यादा तक कार्य पहुँचाने का श्रेय यदि विशेषत: किसी व्यक्ति को देना हो, तो उन्ही को देना पड़ेगा ।

जनसंघ का अध्यक्ष पद

वे उसके सर्वोच्च पद पर भी पहुँचे । यद्यपि मेरी इच्छा नहीं थी कि वे अध्यक्ष पद ग्रहण करें और उनकी भी इच्छा नहीं थी । मुझे उनसे कहना पड़ा था कि थोड़े समय के लिए, साल भर के ही लिए आपद्धर्म के रूप में, अध्यक्ष-पद स्वीकार कर लो, इसीलिए उन्होने इस पद को स्वीकार किया, नहीं तो वे स्वीकार करने वाले नहीं थे । उन्हें मान-मान्यता या पद की लिप्सा नहीं थी और इसीलिए उनके मन में अध्यक्ष-पद स्वीकार करने की बिलकुल इच्छा नहीं थी । मैं भी नहीं चाहता था । परन्तु किसी न किसी परिस्थिति के कारण मुझे भी एक प्रकार से बाध्य होकर उन्हें पद-ग्रहण के लिए कहना पड़ा था और मेरे कहने के कारण, स्वयंसेवक जिस तरह निर्देश-आदेश का पालन करता है, इसी नियम के अनुसार उन्होंने उसका पालन किया ।

उनकी अध्यक्षता के समय से थोड़े दिनों में ही जनमानस के ऊपर बड़ा अच्छा परिणाम दिखाई पड़ा । बड़े-बड़े विरोधी भी सोचने लगे कि अन्ततो- गत्वा देश की बागडोर संभालने वाला यही राजनीतिक दल (जनसंघ) होगा । कुछ लोग यह भी कहने लगे कि इसके पीछे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की जो शक्ति है, वह इस व्यक्ति के रूप में मूर्तिमान खड़ी है ।

तीन बलिदान

ऐसा दिखाई देता है, जनसंघ का निर्माण कुछ बड़ी ही कठिन स्थिति में हुआ है । उसका भाग्य खराब है । पहले उसके अध्यक्ष डॉश्यामाप्रसाद मुखर्जी थे, उनकी एक प्रकार से राजनीतिक-हत्या हुई । फिर उसके बाद बडे भाग्य से डॉ० रघुवीर प्राप्त हुए । वे भी बड़े योग्य पुरुष थे । उनके कारण विदेशों में भी इस राजनीतिक दल का बोलबाला हो सकता था और प्रभाव निर्माण हो सकता था, किन्तु थोड़े ही दिनों में उनका अपघात हो गया और इसके बाद सर्वांग-परिपूर्ण कार्य करने वाला जो अध्यक्ष (दीनदयालजी) प्राप्त हुआ, वह अब इस प्रकार गया ।

एक के बाद एक आते रहेंगे

मैं काशी गया था, उनके शरीर को देखने के लिए । विमान से शरीर को विदा करने के बाद यहाँ आया । परन्तु मेंने आँसू नहीं बहाये । कुछ पता नहीं, लोगों ने मेरे बारे मे क्या समझा होगा । अपने पुराने सुभाषितों में यह वचन आता है कि जो कार्यार्थी हैं, वह दुःख और सुख इन दोनों को अवहेलित करके काम करता है -

मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुखम् न च सुखम ।

भगवत्कृपा से मेरे मन की शायद ऐसी कुछ स्थिति बन गयी है और मैं उसको पचा कर चलने के लिए प्रस्तुत हुआ हूं । अब दूसरा कोई भी उतनी योग्यता से कार्य उठाने के लिए आगे नहीं आयेगा, ऐसी कोई बात नहीं है । कार्य बड़ा है, संगठन का कार्य है, अनेक कार्यकर्त्ताओं की परम्परा विद्यमान है, जो एक के बाद एक आगे आते रहेंगे ।

कोई स्थान रिक्त नहीं रहेगा और मुझे पूर्ण आशा है कि ऐसा ही होगा । इस सम्बन्ध में अधिक नहीं बोलता । जितना बोलूं थोड़ा ही है । सहना तो पड़ेगा ही ।

इतना बोलने के लिए भी मन के ऊपर नियन्त्रण रखने में बहुत परिश्रम करना पड़ा । ईश्वर की कृपा से नियन्त्रण रख सका । उसका परिणाम शरीर की थकावट के रूप में बहुत अधिक हुआ । मैं प्रत्यक्ष करुण दृश्य देखकर आया हूं, इसलिए सोचा कि इसका उल्लेख सबके सामने कर दें ।

सर्वांगपरिपूर्ण योग्यता

हममें से प्रत्येक यह अनुभव करे कि उनकी ऐसी सर्वांगपूर्ण योग्यता हर एक को बढ़ानी चाहिए । मेरे कहने का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि मैं सब लोगों को राजनीतिक क्षेत्र की ओर अपना झुकाव करने के लिए कह रहा हूं । वस्तुत: झुकाव तो बिलकुल होना ही नहीं चाहिए । जिस व्यक्ति का मैंने यहा, उल्लेख किया, उसका राजनीतिक क्षेत्र की ओर कतई झुकाव नहीं था । पिछले वर्षो में कितनी ही बार मुझसे उन्होंने कहा- "किस झमेले में मुझे डाल दिया? मुझे फिर से अपना प्रचारक का काम करने दें ।"

मैंने कहा-"भाई, तुम्हारे सिवा इस झमेले में किसको डालें? "

संगठन के कार्य पर जिसके मन में इतनी अविचल श्रद्धा और दृढ़ निष्ठा है, वही उस झमेले में रहकर, कीचड़ में भी कीचड़ से अस्पृश्य रहता हुआ सुचारु रूप से वहाँ की सफाई कर सकेगा, दूसरा कोई नहीं कर सकेगा । इसीलिए मेंने कहा कि उधर (राजनीतिक क्षेत्र) की ओर अपना झुकाव करने के लिए मैं किसी को नहीं कह रहा ।

--------------------------------------इति---------------------------------------

हमारे दीनदयालजी - श्री गुरुजी

('पोलिटिकल डायरी' नाम से पं० दीनदयाल उपाध्याय के लेखों के संग्रह का प्रकाशन दि० १७ मई, १९६८ को बम्बई में श्रीगुरुजी के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ था । उस अवसर पर श्री गुरुजी द्वारा दिया गया भाषण यहां प्रस्तुत है ।)

पं० दीनदयालजी ने 'पोलिटिकल डायरी' नाम से अंग्रेजी साप्ताहिक 'आर्गनाइजर' में जो लेख लिखे हैं, उसी नाम से पुस्तक के रूप में वे प्रसिद्ध हो रहे हैं । उस पुस्तक को सबके सम्मुख प्रस्तुत करने के लिए मेरी जो योजना हुई है, वह बहुत योग्य है ऐसा अपने मित्रवर श्री राम बत्राजी ने बताया । उन्होंने 'पर्टिनट' (प्रसंगोचित) शब्द का प्रयोग किया । उसी शब्द का प्रयोग कर मैं कहता हूं कि मेरे लिए यह काम 'इपर्टिनट' (अनधिकार) होगा । कारण भी बताता हूँ ।

अपने देश के एक अति श्रेष्ठ पुरुष के बारे में ऐसा कहा जाता है कि एक बार एक वृद्ध सज्जन उनसे मिलने गए । वे श्रेष्ठ पुरुष देश के मान्यता प्राप्त, बहुत प्रसिद्ध, जनसाधारण के नेता थे । भेंट होते ही उन्होंने उक्त वृद्ध सज्जन को अतीव नम्रतापूर्वक प्रणाम किया । जब लोगों ने पूछा, तो उन्होने बताया कि ये वृद्ध सज्जन प्राथमिक शाला में उनके गुरु थे । उन्होंने ही पढ़ाया और आशीर्वाद दिया कि बुद्धिमान बनो । उन्ही के आशीर्वाद से वे बड़े बने हैं ।

वे अध्यापक जानते थे कि उनकी योग्यता केवल प्राथमिक शाला में पढ़ाने की थी और ये श्रेष्ठ पुरुष जितने विद्वान हुए, जितनी श्रेष्ठता उन्होंने प्राप्त की, उतनी विद्वत्ता, श्रेष्ठता प्रदान करने की क्षमता उनके अन्दर नहीं थी । मेरा भी पण्डित दीनदयाल से जो कुछ सम्बन्ध आया, वह उस प्राथमिक शाला के शिक्षक के रूप में ही समझना चाहिए, उससे अधिक नही ।

अब यह लेख-संग्रह है । डॉ० सम्पूर्णानन्द जी जैसे ख्यातनाम विद्वान और देश की राजनीति के अग्रगण्य पुरुष ने प्रस्तावना लिखकर इस लेख-सग्रह की महत्ता को बहुत बढ़ाया है । मुझे इसका समाधान भी है कि डॉ सम्पूर्णानन्द जी ने एक बहुत ही अच्छी परम्परा का अनुसरण किया है । जनतन्त्र का उदय इंग्लैण्ड में हुआ । वहाँ के जनतन्त्र के एक बहुत बड़े समर्थक ने कहा है, "मेरे विचारों से विपरीत विचार व्यक्त करने का तुम्हें अधिकार है, यह मैं मानता हूँ और केवल इतना ही नहीं, तो तुम्हारे इस अधिकार का मैं समर्थन और रक्षण करूँगा ।" "आय विल डिफेंड यूअर राईट ।" यह जो भाव है वह जनतन्त्र की सफलता के लिए अनिवार्य है । मैं समझता हूँ कि डॉ० सम्पूर्णानन्दजी ने इसी शुद्ध भावना से प्रेरित होकर प्रस्तावना का यह उपक्रम किया है ।

इस संग्रह में जितने लेख हैं, वे मैंने शायद ही पढ़े होंगे । मैं वृत्तपत्र पढ़ने में बहुत कच्चा हूँ । कभी-कभार दिखाई दे गया तो पढ़ लेता हूं। जो भी हाथ लग जाए । एक बार एक वृत्तपत्र पढ़ रहा था । लोगों ने पूछ लिया-क्या पढ़ रहे हो? मैंने कहा क्या हुआ? तो उन्होंने बताया कि यह तो तीन माह पुराना है! फिर, मेरा दुर्भाग्य यह है कि देश के हित की दृष्टि से जो आवश्यक हो, देश के लिए कोई अहितकर बात हो, सावधान करने वाली घटना हो, उसी पर पहले मेरी दृष्टि पड़ जाती है । लोग कहते हैं,तुम दोष देखते हो । बात सच भी है । अब इस संग्रह में जो छपा है वह मेंने देखा । बिलकुल प्रारम्भ में डॉ० सम्पूर्णानन्दजी के प्राक्कथन में संस्कृत का जो उद्धरण है, उसे देखकर मेरे रोंगटे खड़े हो गए । कारण यह कि वह ठीक नहीं छपा । ऐसा दिखाई देता है कि अंग्रेजी छापे-खाने का यह गुण ही है कि संस्कृत वचनों को वे अवश्यमेव गलत छापेंगे । पता नहीं ऐसा क्या विधिलिखित है ?

मूलगामी विचारों के अभ्यासक

आज के इस कार्यक्रम का प्रबन्ध करने वाले एक महानुभाव ने इस लेख-संग्रह की कच्ची प्रतिलिपि मुझे दी थी । यह सोचकर कि बुद्धि में अन्धकार रखकर खड़े होना योग्य नहीं, मैंने यहाँ से राजकोट जाते समय और वहाँ से विमान से यहाँ आते समय पूरी पुस्तक पढ़ ली । पुस्तक में अनेक विषय तो तात्कालिक ही हैं, परन्तु हमारे दीनदयालजी की एक विशेषता यह थी कि तात्कालिक विषय को भी एक स्थायी सैद्धान्तिक अधिष्ठान देकर वे लिखा करते थे, बोला करते थे । केवल तात्कालिक बात कहकर उसे छोड़ देना

उनका स्वभाव नहीं था । कई वर्षों तक निकट सहकारी के नाते मैं उन्हें जानता रहा हूँ । मुझे पता है कि वे मूलगामी-विचारों के अभ्यासक थे । तात्कालिक समस्या पर बोलते या लिखते समय भी, उसके पीछे कोई न कोई चिरंतन सिद्धान्त है, इसका विचार कर उसके अधिष्ठान पर ही वे शब्द प्रयोग किया करते थे ।

यह ठीक है कि राजनीतिक विरोधी दल के कार्यकर्ता-नेता के नाते शासनारूढ़ दल के अनेक कार्यों पर, उनकी नीतियों पर उन्होंने टीका टिप्पणी की है । कभी-कभार कुछ व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी कोई बात न आई हो, ऐसा भी नहीं । परन्तु उनके लेखों को हम सहृदयता से देखेंगे, तो दिखाई देगा कि टीका टिप्पणी करते समय भी उनके समूचे हृदय में किसी दल और किसी व्यक्ति के प्रति किसी प्रकार के अनादर की, दूरता की भावना नहीं थी । जो कुछ लिखा है, वह आत्मीयता से लिखा है । आत्मीयता इसलिए कि कोई भी दल हो, अपने ही यहाँ का क्यों न हो, यदि अनिष्ट मार्ग से चलता है, तो दल का जो भला-बुरा होने वाला हो वह तो होगा ही, परन्तु अन्ततोगत्वा देश का ही नुकसान होता है । विभिन्न दलों में काँग्रेस कहें, सोशलिस्ट-प्रजा सोशलिस्ट कहें, जनसंघ, हिन्दू सभा या राम- राज्य परिषद कहें, सभी दलों में लोग तो अपने ही हैं । अपने लोग यदि कोई त्रुटि, कोई भूल करते हैं, अनिष्ट नीतियां अपनाते हैं, कोई कृति करते हैं जो देश के लिए लाभकारी न हो, तो उसके सम्बन्ध में बोलना, सचेत करना देश की भलाई के लिए आवश्यक ही रहता है ।

प्रधानमन्त्री : देश की सीमाओं से अनभिज्ञ

जिसे आजकल राजनीति बोलते हैं याने दलगत, उसके सम्बन्ध में मैं कुछ जानता नहीं । देश, राष्ट्र और समाज की सब प्रकार की श्रेष्ठता, सुरक्षा, उसका सम्मान आदि से जिसका सम्बन्ध होता है, उसी के सम्बन्ध में मैं बोलता हूँ । उदाहरण बताना हो तो कच्छ का जो मामला हुआ है, उसे ही ले । इसके सम्बन्ध में बोलते समय अपने प्रधानमन्त्री ने कहा, "अंग्रेज गए तो उन्होंने हमको बताया नहीं कि देश की सीमा क्या है । इसलिए कच्छ का यह हिस्सा हमारा था या नहीं,यह हमको पता नहीं ।" यह अब मैंने पढ़ा तो

मुझे अतीव दुःख हुआ कि अपने देश का प्रधानमन्त्री अपने देश की सीमा नहीं जानता। इसलिए मैंने कहा कि जिसको देश की सीमा ही मालूम नहीं वह अपना घरबार बसाए तो इसमें कोई प्रत्यवाय नहीं, परन्तु प्रधानमन्त्री के दायित्वपूर्ण पद पर उसे नहीं रहना चाहिए। देशभक्ति की यह माँग है कि वे स्वयं त्यागपत्र दें और देशभक्ति की ही यह माँग है कि यदि वे त्यागपत्र न दें तो मन्त्रिमण्डल के उनके जो सहयोगी हैं वे उनसे अपना स्थान छोड़ने की प्रार्थना करें। यह बड़ा लाभदायक होगा। इससे देश के भीतर अच्छा वायुमण्डल उत्पन्न करने में सहायता भी होगी। मैं जानता हूँ कि मैंने जब यह कहा, तो इससे काफी लोग नाराज हुए। कुछ लोगों ने कहा कि ये राजनीतिक बात करते हैं।

शासन कोई भी चलाए

शासन कांग्रेस चलाती है या और कोई चलाता है इससे मुझे कोई सुख-दुःख नहीं। शासनअच्छा चलता है, देश की रक्षा होती है, जनसाधारण सुरक्षा अनुभव करते हैं, सुख की वृद्धि होती है, आत्मविश्वास, राष्ट्रभक्ति आदि पवित्र गुणों का विकास होकर सर्वसाधारण मनुष्य चारित्र्यसम्पन्न, शीलसम्पन्न, आत्मसमर्पण की भावना से युक्त बनता है, इसमें मेरी रुचि है। मुझे इसमें कोई रुचि नहीं कि वहाँ कुर्सी पर कौन बैठता है।

शिखर पर बैठने की सबकी इच्छा होती है, परन्तु मैंने कहा कि भाई शिखर पर बैठने की इच्छा क्यों हो ? बड़े-बड़े मन्दिरों के शिखर पर तो कौवे भी बैठते हैं। हमें तो, उस नींव का पत्थर बनने की आकांक्षा करनी चाहिए जो अपने कन्धों पर मन्दिर को भव्य स्वरूप देता है। इसलिए जहाँ ऐसे गुणों का विकास दिखाई देता है, वहाँ मुझे सन्तोष होता है। अपने स्वदेशी लोगों द्वारा चलाया हुआ राज्य जब तक रहेगा तब तक हम तो तुलसीदास जी के वचन में यह कहेंगे-'कोउ नृप होउ हमहि का हानी'। अर्थात् विदेशी नही चलेंगे। परकीय, आक्रमणकारी, राष्ट्रविरोधी नहीं चलेंगे। स्वकीय कोई भी हो, अपने ही हैं। आनन्द से बैठें। हमें उसमें क्या चिन्ता है। परन्तु मन को खटकने वाली, राष्ट्र की दृष्टि से अपमानकारक कोई बात दीखती है, तो उसका उल्लेख करना मेरा धर्म है। इसमें राजनीति वगैरह की कोई झंझट नहीं। और जब कोई ऐसा कहता हो, तो कहना चाहिए कि उसे राजनीति समझती ही नहीं। बेकार ही राजनीतिक दल में काम करता है।

युधिष्ठिर की परम्परा के अनुगामी

पं० दीनदयालजी एक विरोधी दल के प्रमुख व्यक्ति थे । उनका तो यह कर्तव्य ही था कि जो अनिष्ट दिखे, जो-जो कुछ त्रुटिपूर्ण दिखाई दे, उसके विषय में अपने मत वे असंदिग्ध शब्दों में प्रकट करें । यह उन्होंने किया भी । परन्तु उनके सब लेखों को देखें, तो हमें दिखाई देगा कि उनके हृदय के अन्दर कोई कटुता नहीं थी । शब्दों में भी कटुता नहीं थी । बड़े प्रेम से बोला करते । मेरा तो बहुत सम्बन्ध था । कभी किसी पर जरा भी नाराज नहीं हुए । बहुत खराबी होने पर भी खराबी करने वाले के प्रति अपशब्द का प्रयोग नहीं किया । वे युधिष्ठिर के समान थे । दुर्योधन में दुराक्षर था इसलिए वे 'दुर्योधन' नहीं 'सुयोधन' कहा करते थे । दीनदयालजी भी इसी परम्परा के थे । इसीलिए उनमें कटुता दिखाई नहीं दी । शब्दों में नहीं, हृदय के अन्दर नहीं, वाणी में भी नहीं । इस पुस्तक में हमें उसका प्रत्यय मिलेगा ।

प्रजातन्त्र : कम दोषों वाली राज्य-पद्धति

अपना यह जो जनतान्त्रिक ढांचा है, वह एक विशेष प्रकार का है । अंग्रेजों के सम्पर्क में आने के कारण उन्होंने जैसी प्रजातन्त्र की पद्धति

अपनाई, विकसित की, उसी को हमने ग्रहण किया, उसी का अनुसरण किया । स्वयं हमने तो यह पद्धति बनाई नहीं । लोग कहते हैं कि आजकल की यही सर्वश्रेष्ठ पद्धति है और राज्य चलाने की जो भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ हैं उनमें से यह पद्धति अन्तिम सत्य के रूप में प्रकट हुई है । 'ब्रह्म सत्य' कहा तो लोग कहते हैं कि इसको अन्तिम सत्य मत मानो, इस विषय में कुछ और संशोधन करो । 'ब्रह्म' के बारे में इस प्रकार का तर्क करने वाले लोग ही 'प्रजातन्त्र' के बारे में ऐसा कहते है कि राज्य चलाने की जो भिन्न-भिन्न पद्धतियां हैं, उनमें यह पद्धति अन्तिम सत्य के रूप में प्रकट हो गई है ।

राज्य चलाने की और भी भिन्न-भिन्न पद्धतियां हैं । सामान्य व्यवहार के क्षेत्र में जहाँ कोई चीज कभी भी स्थायी नही रहती, नित्य बदलती रहती है वहाँ यही एक पद्धति अन्तिम है, सत्य है- यह बात जँचती नही । इसके बारे में कोई यह कह नहीं सकता कि

यही एक श्रेष्ठ है! फिर भी आज हम लोगों ने यह मान लिया है कि यह अच्छी है । अपने सामने चलने वाली अन्य विभिन्न पद्धतियों की तुलना में इसमें दोष कम हैं । कुछ दोष तो अवश्य ही हैं । परन्तु कम से कम हैं । दोष हों भी, तो उनको दुरुस्त करने की कुछ सम्भावना भी रहती है । इसीलिए यह अच्छी है । परन्तु अच्छी कब है? वह अच्छी तभी है, जब, उसके जो पथ्य हैं, उन्हें समझकर तदनुसार हम सब लोग मिलकर व्यवहार करने के लिए कटिबद्ध हों । यदि किसी ने कहा कि अन्य लोग पथ्यों का पालन करें, मैं नहीं करूंगा; कोई कहे कि वह इस पद्धति को भी नहीं मानता, देश को भी नहीं मानता, तब तो यह बड़े खतरे की बात है । इसी बात का विचार कर पं० दीनदयालजी ने जनतन्त्र के विषय में अपना मत प्रकट किया है, कुछ गुण बताए हैं । यह बताया है कि मताधिकार का प्रयोग कैसे करना चाहिए । उसमें कुछ अंश तो अपने दल के प्रचार का है । इसमें कोई दोष भी नहीं, क्योंकि कोई भी आदमी अपने दल का प्रचार तो करेगा ही । परन्तु इसके साथ ही उन्होंने स्थायी सिद्धान्त भी दिए हैं जो सदा के लिए, सभी दलों और सभी दलों के सभी व्यक्तियों के लिए हैं । सम्पूर्ण समाज के प्रत्येक व्यक्ति को इन पर विचार करना चाहिए । सफल प्रजातन्त्र के लिए यह आवश्यक है;, लाभदायक है । विचारों का खाद्य आर्थिक समस्या, पंचवर्षीय योजना आदि की दृष्टि से भी इसमें अनेक प्रकार के विचार दिए गए हैं । मेंने पढ़ने का प्रयत्न किया । इसमें राजनीति है, अर्थनीति भी है । इनके विषय में मैं कुछ बोल नहीं सकता, परन्तु इतना कह सकता हूँ कि अत्यन्त मनन से, देश का ही भला हो, इस प्रकार हृदय से गम्भीरतापूर्वक विचार करने के बाद जो मत बने; वे ही इन लेखों में उन्होंने अभिव्यक्त किए हैं । सब लोग यदि थोड़ा-सा पठन करेंगे तो विचार के लिए कुछ खाद्य मिलेगा, स्वतन्त्र रूप से विचार की अनुकूलता प्राप्त होगी, देश के सम्पूर्ण जनतान्त्रिक ढांचे में अपनी ओर से भी कुछ योगदान करने की अपनी क्षमता बढ़ेगी ।

असामान्य कर्तृत्व

उनके व्यक्तिश: सम्बन्ध में मैं कुछ बोलूंगा नही, अभी तक मैंने कुछ कहा नहीं । मुझे बहुत ही दु:ख होता है । वे संघ के एक प्रचारक थे । मैं संघ का एक स्वयंसेवक हूँ । संघ याने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ । उसका कुछ उत्तरदायित्व लोगों ने मुझ पर रखा है । इम

कारण उनसे अपना एक प्रचारक के नाते मेरा सम्बन्ध था । अब तो मैं 'पण्डितजी' वगैरह कहता हूँ, क्योंकि सर्वसामान्य समाज में उन्होंने जो प्रतिष्ठा प्राप्त की, उस नाते मुझे वैसा कहना चाहिए । परन्तु वह एक बालक , एक विद्यार्थी इस नाते बढ़ा । केवल बढा ही नही, तो बड़ा हुआ । इम प्रकार का हमारा सम्बन्ध था । मेरे सामने देखते-घूमते चला गया । में उससे १० - १२ साल बड़ा हूँ । वह गया बिलकुल तारुण्य में । इसका दु:ख है ।

कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है कि वह संघ का प्रचारक था तो अच्छा था । हमारे स्व० डॉ० श्यामाप्रसाद एक बार मेरे पास आए और उन्होने कहा, "मैं राजनीति का एक दल चलाता हूं । मुझे कुछ कार्यकर्ता दो ।" इस पर हमारे सब मित्रो ने कहा कि "दीनदयाल अच्छा आदमी है । उनको एक अच्छा आदमी चाहिए । डॉ श्यामाप्रसाद से अपना निकट सम्बन्ध है, तो उनको एक सहयोगी देना कठिन नहीं है । "इसलिए उनमे कहा कि अच्छा, दीनदयाल आपको देते हैं । उन्हें वह प्राप्त हो गया । जनसंघ की वृद्धि से हम समझ सकते हैं कि उन्हें कितना बड़ा कार्यकर्ता प्राप्त हुआ । थोड़े ही समय में उसने जो प्रतिष्ठा कमाई, एक नाम कमाया, उससे हम समझ सकते हैं कि उसमें कितना कर्तृत्व था ।

समय से पूर्व ही चला गया

मैं जानता था कि वह कर्तृत्ववान है । मैं जानता था कि वह गुणवान है, बुद्धिमान है । मुझे इस बात का भी प्रत्यक्ष अनुभव था कि संघ के प्रचारक के नाते वह संगठन के शास्त्र में कुशल है । मैं यह भी जानता था कि अपनी मधुर वाणी, स्निग्ध व्यवहार और सब प्रकारके मानसिक-बौद्धिक सन्तुलन से उस क्षेत्र में वह असामान्य स्थान प्राप्त करेगा । देश में तो उसे बहुत बड़ा स्थान प्राप्त हो चुका था । और भी बड़ा स्थान मिल सकता था, मिलने वाला था । मुझे दु:ख यही होता है कि जगत में सामने आने, असामान्य स्थान प्राप्त करने के पहले ही वह चला गया । जगत में भी उसका नाम हमेशा के लिए स्मरण रह सके, ऐसा बनने के पहले ही वह चला गया ।

जो ईश्वर को प्रिय होते हैं

अपने घर का लड़का बुद्धिमान हो, होशियार हो, खूब उत्तम रीति से परीक्षा उत्तीर्ण हो रहा हो, जिधर-उधर नाम कमा रहा हो, ऐसा लड़का चट से चला जाए तो माँ-बाप को कैसा दुख होता है? आपमें से बहुतांश परिवार चलाने वाले लोग हैं । आप उसकी कल्पना कर सकते हैं । मैं परिवार नहीं चलाता, इसलिए मेरी जो दु:ख की भावना है वह शतगुणित है । इसीलिए उसके वैयक्तिक सम्बन्ध में कुछ नहीं कहूंगा । इतना ही कहूँगा कि ईश्वर ने ले लिया है । अंग्रेजी की एक पुरानी कहावत मैंने पढ़ी है कि "दोज हूम गॉड लह्वज डाय यंग" । भगवान् को शायद उसपर अतीव प्रेम था, इसी कारण हम लोगों के प्रेम की अवहेलना कर के वह उसे उठा कर ले गया ।

जांच हृदय से नहीं हुई

जिस प्रकार से वह गया, जिस प्रकार की वह घटना है, वह भी दु:ख- कारक है । उसका कोई पता नहीं लगा सका, यह और भी दु:खकारक

और लज्जास्पद है । इस मामले में जो कुछ हुआ है, उसकी मुझे पहले ही आशंका थी । उसके शरीर का दर्शन करने के लिए मैं वाराणसी गया था । पोस्टमार्टम के स्थान पर उसका शरीर देखा और बाहर आ गया । मित्रों से मेंने कहा-

"भाई देखो, इसका जो 'इन्वेस्टिगेशन' है, इट विल बी साईड ट्रेक्ड, बी अवेयर, टेक केयर ।" (इसकी जो जाँच होगी वह मार्गभ्रष्ट कर दी जायेगी, इसलिये सावधान रहो और हर तरह की सावधानी बरतो ।)

मित्रों ने कहा, "ऐसा क्यों कहते हो?" परन्तु चारों ओर देख कर मेरे हृदय में यह निश्चित आभास हो गया था ।

मुझे ऐसी पूर्वसूचना अनेक बातों की मिलती है । ऐसी ही यह पूर्व सूचना मेरे हृदय की थी । किसने किया होगा; नाम तो कहने की मेरी शक्ति नहीं है, परन्तु किन क्षेत्रों से यह हुआ है- इसकी भी पूर्वसूचना मेरे अन्त:करण में है । मेरे हृदय का यह परिपूर्ण विश्वास है कि अभी जो कुछ चल रहा है, वह तो उस पर परदा डालने के लिए ढकोसला खड़ा किया जा रहा है । परन्तु मैं तो कुछ कर नहीं सकता । मैं कोई 'इन्वेस्टिगेटिंग ऑफिसर'

तो हूँ नहीं और न कोई सरकारी अधिकारी हूँ । यह व्यथा मात्र मैं प्रकट कर देता हूँ कि जाँच-पड़ताल हृदय लगाकर नहीं हुई है और ऐसा लगता है कि जाँच-पड़ताल को मार्गभ्रष्ट करने का प्रयास भी किया गया ।

मैं समझता हूँ कि यह ठीक नहीं है । आज एक दल का गया, यह दुर्भाग्य अन्य दलों पर नहीं आएगा यह कोई कह सकता है क्या? इसलिए उसका वहीं पर याने प्रथम स्थिति में ही प्रबन्ध किया जाना चाहिए । योग्य रूप से पता लगाकर, इसके लिए अगर कोई दल, कोई समाज अथवा व्यक्तिसमूह अपराधी दिखाई दे, तो उसे कठोर रीति से दण्डित कर एक ऐसा वायुमण्डल उत्पन्न करना आवश्यक है, जिससे फिर कभी कोई खराब माथे का व्यक्ति या व्यक्ति-समूह, अपने देश का जनतन्त्र चलाने वाले किसी भी दल के किसी भी व्यक्ति पर हाथ उठाने का साहस न कर सके । ऐसा वायुमण्डल बनाना सभी का कर्तव्य है, शासन का तो वह धर्म है । वह नहीं हुआ, इसका दुःख है ।

रोने के लिए समय कहाँ ?

परन्तु 'गतं न शोच्यं' आगे का सोचो । मैं रोते नहीं बैठा, कभी बैठूंगा भी नहीं । परन्तु अन्य कार्यकर्ता उसके शरीर को देखते ही कटे पेड़ की तरह हो गए । गिरते हुए इन कार्यकर्ताओं को पकड़ कर मैंने कहा-

"क्या कर रहे हो, भाई? आप तो एक कार्य के पीछे लगे हुए हो । रोने के लिए समय किसके पास है? अपने पास समय नहीं । शरीर जब कार्यक्षम नहीं रहेगा, कार्य की वृद्धि नहीं कर पाएंगे, तब बुढ़ापे में और मृत्युशय्या पर जितने भी दुःख हैं उनके लिए रो लेंगे । अभी रोने के लिए समय नहीं है । यह तो काम का समय है ।"

दीनदयाल कोई अन्तिम नहीं है

इसलिए हमें सोचना चाहिए कि गया तो जाने दो । एक गया तो क्या होता है । यह तो बहुरंत्ना वसुन्धरा है हमारी । हमारे समाज ने एक के बाद एक कितने ही असामान्य पुरुष पैदा किए हैं । दीनदयाल कोई अन्तिम नहीं है । वैसे पुनः उत्पन्न हो सकते हैं, ऐसा विश्वास दिलाने वाली एक विभूति इस नाते से वह अपने सामने है । इसी आश्वासन के साथ, हम अपने अन्तःकरण में यह आशा और विश्वास लेकर चलें कि अपनी लगन से,

अपनी ध्येयनिष्ठा से, अपने प्रयत्नों से अपने समाज मे एक से एक बढकर कार्यकर्ता फिर से खड़े होंगे । विचार करने वाले खड़े होगे । व्यक्तिगत परिवार-संसार की सब चिन्ताओं को छोड़कर केवल राष्ट्र का ही परिवार चलाने की दृढ़ता हृदय के अन्दर लेकर चलने वाले और जिन्हें त्यागमूर्ति न भी कहा जाए, परन्तु जो त्याग के परिपूर्ण रूप हों, इस प्रकार के लोग खड़े होंगे । इसके लिए प्रयत्न करना अपना प्रथम कर्तव्य है । हृदय के अन्दर ऐसा दृढ़ विश्वास लेकर हम लोग चलें, तो ऐसा समझा जाएगा कि उनके स्मारक इत्यादि की दृष्टि से हम लोगो ने अच्छा कार्य किया ।

---इति---

युगद्रष्टा दीनदयाल - दत्तोपन्त ठेंगड़ी

सभी महान व्यक्तियों के समक्ष कोई न कोई बाधा रही है । यह सत्य ही कहा गया है कि जॉनसन जैसे महान व्यक्ति विरले ही होते हैं, परन्तु उनकी जीवनी लिखने वाले बांसवेल जैसे व्यक्ति तो और भी कम होते हैं । पर्वत शिखर पर खड़े एकाकी वृक्ष की भाँति महान व्यक्ति भी सबसे भिन्न, सबसे ऊपर रहता है । फिर भी इस पवित्र अवसर पर प्रत्येक सच्चे भारतीय को एक राजनीतिक दल के उस साधु स्वभाव वाले पथ-प्रदर्शक का स्वत: ही स्मरण हो जाता है, जिसने एक दृढ़ निश्चय के साथ राजनीति में प्रवेश किया था ।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, पंडित दीनदयाल उपाध्याय सच्चे राष्ट्रभक्त थे । उनकी राष्ट्रीयता की धारणा मात्र काल्पनिक न थी, अपितु वह बड़ी व्यावहारिक थी । इसके साथ उनकी राष्ट्रभक्ति उनके अन्तर- राष्ट्रीयवादी होने में बाधक नहीं थी । उल्टे, अन्तर्राष्ट्रीयता उनके प्रगतिशील राष्ट्रवाद का स्वाभाविक परिणाम थी । उन्होंने यह अनुभव किया था कि किसी व्यक्ति का परिवार से लेकर ब्रह्माण्ड तक सभी से लगाव उसकी चेतना के विकास की बाह्य अभिव्यक्ति मात्र है । उसकी चेतना जितनी ही अधिक विकसित हुई रहेगी, उतने ही उच्च तथा विस्तृत क्षेत्र से या समाज के अंग से उसका लगाव होगा । परन्तु यह विकास की एक प्रक्रिया है, उच्चस्तर की चेतना निम्नस्तरों की चेतना से विकसित होकर ही प्राप्त होती है । उस चेतना में अन्य सभी स्तरीय चेतनाओं का समावेश रहता है, वे उससे पृथक नहीं रहतीं । इस प्रकार, समाज के सभी अंगों के

साथ समान रूप से तथा एक साथ ही, उनमें से किसी एक के साथ भी बिना कोई अन्याय किये, लगाव बनाया रखा जा सकता है । आवश्यकता होती है एक यथार्थवादी तथा भेद-विहीन दृष्टिकोण की । मानव की भी कल्पना भेद-विहीन रूप में की जानी चाहिए । किसी व्यक्ति के शरीर, मस्तिष्क, दृष्टि एवं आत्मा की कल्पना सम्यक् रूप से ही, न कि अलग- अलग करनी चाहिए ।

समन्वयकारी मानववाद

इसी के आधार पर उपाध्यायजी ने अपने 'समन्वयकारी मानववाद' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, जो पाश्चात्य देशों की संकुचित एवं सीमाबद्ध विचारधाराओं के ठीक विपरीत है । इन विचारधाराओं के ही कारण जीवन के सभी स्तरों तथा क्षेत्रों में पारस्परिक झगड़े तथा संघर्ष उत्पन्न हो गये हैं । बीज, अंकुर, तना, शाखा, पत्तियाँ तथा फल एक ही अबाधित विकास प्रक्रिया के विभिन्न अंग हैं । उनमें आपस में कोई विपरीतता या अनन्यता नहीं है ।

सच तो यह है कि पण्डितजी की कल्पना मानवजाति तक ही सीमित न थी । उनका समन्वयवाद इस बात का द्योतक है कि मानव-चेतना विश्वव्यापी चेतना के रूप में विकसित हो सकती है । इसीलिए, वे संकुचित दायरे वाले न होकर मानववादी थे । फलत: उन्होंने सोचा कि उनकी विचार प्रणाली के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त नाम 'समन्वयवाद' ही होगा । चूंकि उनके क्रियाकलाप का क्षेत्र बड़ा व्यावहारिक था इसलिए उन्होंने सोचा कि तात्कालिक सन्दर्भ में 'समन्वयकारी मानववाद' अधिक सुविधापूर्ण पद होगा, जो उनकी चरम कल्पना तथा सामान्य धारणा के बीच का एक पद था । बाद में इसे ही अधिक उपयुक्त नाम 'एकात्म मानव- वाद' दिया गया । वे 'वाद' शब्द का प्रयोग भी इसीलिए करते थे कि सामान्य लोग इसे ही समझ सकते थे और सनातन धर्म की 'वाद' विहीनता को समझना उनकी बुद्धि के परे था ।

धर्म के अग्रदूत होने के नाते वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बन गये । वे जानते थे कि जब तक राष्ट्र एक दृढ़ आधार पर संगठित नहीं हो जाता, सिद्धान्तों के प्रतिपादन से कोई लाभ नहीं । उन्होंने अनुभव किया कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ सारे राष्ट्र के मनोविज्ञान एवं धारणा के अनुकूल है । उन्होंने संघ की वर्तमान शाखाओं को आदर्श राष्ट्र के आधारभूत ढाँचे के रूप में देखा और उसे दृढ़ बनानेके लिए कठिन परिश्रम किया ।

वे राष्ट्रशक्ति के प्रगतिशील विकास के लिए राजनीतिक क्षेत्र में भारतीय जनसंघ को एक उपयुक्त माध्यम मानते थे ।

'विराट्' राष्ट्र का प्राण

वे देश के पहले राजनीतिक नेता थे, जिन्होंने 'राष्ट्र' की पारम्परिक परिभाषा एवं तत्सम्बन्धी धारणा को एक नया रूप दिया । उन्होंने कहा कि प्रत्येक राष्ट्र का अपना अन्तःकरण, अपना चित् होता है । राष्ट्र को जागरूकता एवं चेतना प्रदान करने वाली शक्ति एवं ऊर्जा उसका 'विराट्' है । वह चित् द्वारा उपयुक्त दिशा में प्रेरित होता है । किसी राष्ट्र के जीवन में 'विराट्' का वही स्थान है, जो शरीर में प्राण का । जिस प्रकार प्राण शरीर के विभिन्न अंगों को शक्ति प्रदान करता है, बुद्धि को ताजा करता है और मानसिक एवं शारीरिक संतुलन ठीक रखता है, उसी प्रकार किसी राष्ट्र में शक्तिशाली 'विराट्' के रहने से ही लोकतन्त्र सफल हो सकता है तथा सरकार कारगर हो सकती है । जब 'विराट्' जागा हुआ रहता है तो विभिन्नता पारस्परिक संघर्ष उत्पन्न नहीं करती, तथा राष्ट्र के लोग एक दूसरे के साथ सहयोग करते हैं, जैसे मानव शरीर के विभिन्न अंग या किसी परिवार के विभिन्न सदस्य एक दूसरे के साथ सहयोग करते।

भारतीय जनसंघ ने संविधान के अनुच्छेद ३७०, सीमावर्ती राज्यों, भाषावार राज्यों, एकात्मक प्रकार की सरकार, गोवा, कच्छ, चीनी तथा पाकिस्तानी आक्रमणों जैसे विभिन्न प्रश्नों के सम्बन्ध में जो दृष्टि- कोण अपनाया था, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पण्डितजी को मुख्य पथ- प्रदर्शक के रूप में पाकर इस राजनीतिक दल ने किस प्रकार राष्ट्र के 'विराट' को फिर से जगाने का श्रेष्ठ कार्य पहले से ही अपना लिया था ।

राज्य : धर्म का अंग

स्वतन्त्रता के बाद के युग में पंडितजी ही पहले राजनीतिक नेता थे, जिन्होंने यह स्पष्ट शब्दों में कहा था कि मानव को सर्वाधिक आवश्यकता है एक धर्म-राज्य की, न कि मात्र बहुसंख्यक द्वारा शासन की । उन्होंने बड़े यत्न से यह समझाया कि धर्म सामान्य अर्थ में कहे जाने वाले धर्म से तथा धर्मराज्य धर्मतन्त्र से किस प्रकार भिन्न होता है । परन्तु धर्म तो सर्वोपरि है । राज्य तो धर्म के विभिन्न अवयवों एवं अंगों में से एक है, निःसन्देह वह महत्वपूर्ण है, परन्तु धर्म से ऊपर नहीं । वह धर्म के अधीन है । सार्वभौमिकता तो धर्म की है । धर्म ही राष्ट्र को शक्ति प्रदान करता है । संविधान भी धर्म के अनुकूल ही होना चाहिए । संविधान के वे अनुच्छेद, जो धर्म के विरुद्ध हों, अवैध समझे जाने चाहिए । विधान मण्डल तथा न्यायपालिका दोनों ही समान स्तर पर हैं । कोई दूसरे से बड़ा नही

है । धर्म दोनों ही से बड़ा है, दोनों ही धर्म द्वारा शासित होते हैं । जनता को अपनी सरकार चुनने का अधिकार है । परन्तु न तो जनता को और न सरकार को धर्म के विरुद्ध कार्य करने का अधिकार है ।

स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र और धर्म

'जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता की सरकारें' यही लोकतन्त्र की परिभाषा कही गयी है । इस परिभाषा में 'की' स्वतन्त्रता का बोधक है, 'द्वारा' लोकतन्त्र का, तथा 'के लिए' धर्म का । चुनाव तथा बहुमत यह निर्णय कर सकते हैं कि कौन सरकार बनायेगा, परन्तु बहुमत द्वारा सच्चाई का निर्णय नहीं हो सकता । अमेरिका के दक्षिणी राज्यों द्वारा व्यक्त किए गए बहुमत के समक्ष अब्राहम लिंकन झुके नहीं, और न तो फ्रांस के दिगाल ने ही हिटलर के समक्ष आत्मसमर्पण करने के पक्ष में व्यक्त किये गये बहुमत को स्वीकार किया, क्योंकि बहुसंख्यकों द्वारा व्यक्त किया गया मत धर्म के, जो किसी राष्ट्र के संदर्भ में वह कानून है, जो उस राष्ट्र के 'चित्' की अभिव्यक्ति तथा उसे बनाये रखने में सहायक होता है, अनुकूल नहीं था । धर्म राष्ट्र के 'चित्' का संग्रहालय है । यदि धर्म नष्ट हो जाता है, तो राष्ट्र का भी नाश हो जाता है ।

राष्ट्र की 'इच्छा' व्यापक

पंडितजी यह जानते थे कि किसी राष्ट्र के सभी नागरिकों की इच्छाओं का योग राष्ट्र की इच्छा नहीं कही जा सकती, यद्यपि अधिकांश मामलों में दोनों एक ही जैसी हो सकती हैं । राष्ट्र की इच्छा उसके नागरिकों की इच्छाओं के योग से कहीं अधिक व्यापक तथा उसके ऊपर होती है । अपने नागरिकों की इच्छा से बिलकुल अलग राष्ट्र की अपनी 'इच्छा' होती है, क्योंकि राष्ट्र की उसके नागरिकों के समूह से अलग एक अपनी सत्ता होती है, और प्रत्येक सत्तावान वस्तु की अपनी इच्छा होती है । बीजगणित का एक समीकरण है, जिसके अनुसार 'अ' और 'ब' यदि असंगठित रूप में एक साथ जुट जाते हैं, तो बिना वास्तविक जोड़ के यदि उनका वर्ग कर दिया जाय, तो परिणाम मिलता है- $अ^{२}+ब^{२}$ । परन्तु यदि उन्हें संगठित कर दिया जाय, अर्थात् इस मामले में उन्हें कोष्ठक के अन्दर बन्द कर दिया जाय, और फिर उनका वर्ग किया जाय, यानी $(अ +ब)^{२}$ तो

परिणाम होगा $अ^2$+$ब^2$+2अ ब, न कि केवल $अ^2$+$ब^2$ । यह 2अ ब कहाँ से आ गया? इस प्रकार संगठन की अपनी अलग सत्ता तथा इच्छा होती है ।

नित्य नूतन चिर पुरातन

राष्ट्रवादी होने के नाते पंडित जी राष्ट्र के पुनर्निर्माण की समस्याओं के सम्बन्ध में बड़े चिन्तित रहते थे । उन्होंने पाश्चात्य देशों तथा प्राचीन भारत की विभिन्न विचारधाराओं का अध्ययन किया । उनका मस्तिष्क अतीत से जुड़ा हुआ था, वर्तमान में सक्रिय रहता था तथा भविष्य की चिन्ता करता रहता था । हमारे कुछ उग्र-सुधारवादियों की भाँति वे प्रत्येक पाश्चात्य बात को 'प्रगतिशील' मानने को तैयार नही थे, और रूढ़िवादियों की भांति वे सभी परम्पराओं-मान्यताओं से महज इसलिये नहीं चिपके रहना चाहते थे कि वे भारतीय हैं । वे जीवन-सम्बन्धी भारतीय मान्यताओं तथा आधुनिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के बीच एक तालमेल बैठाना चाहते थे । वे आधुनिक युग की मांगों को, धर्म के सनातन आदर्शो के आधार पर पूर्ण करना चाहते थे । श्री गुरूजी की भाँति, पंडितजी भी यह सोचा करते थे कि राष्ट्र के राजनीतिक ढाँचे के विभिन्न अंगों में एकता उत्पन्न होते ही राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न अंग सक्रियता से तथा बिना किसी पारस्परिक विरोध के सम्यक् रूप से राष्ट्र के कल्याण के लिए कार्य करना आरम्भ कर देंगे । इस प्रकार का सजीव तथा विकासशील समाज प्राचीन विचारधाराओं, पद्धतियों तथा परम्पराओं के समूह में से उन्हें तो रख लेगा जो आवश्यक होंगे तथा उसकी प्रगति में सहायक होंगे, और उन्हें फेंक देगा जिनकी अब कोई उपयोगिता नहीं रह गयी है, तथा उनके बदले में नयी प्रणालियां विकसित करेगा । पुरानी व्यवस्था की समाप्ति पर किसी को आंसू नहीं बहाना चाहिए और न ही नयी व्यवस्था का स्वागत करने से झिझकना चाहिए । सभी चेतन एवं विकासशील वस्तुओं का यही स्वाभाविक नियम है । जब वृक्ष बढ़ने लगता है तो उसकी पकी तथा सूखी पत्तियाँ गिर जाती हैं, ताकि उनके स्थान पर नयी पत्तियां आ जायें और बढ़ना जारी रहे । मुख्य बात मस्तिष्क में रखने की यह है कि हमारे सामाजिक ढाँचे के सभी अंगों में एकता रूपी जीवनी-शक्ति का प्रवाह होता रहे । कोई भी पद्धति या प्रणाली जिस प्रकार इस जीवनी-शक्ति को सिंचित करेगी, उसी प्रकार या तो वह जीवित रहेगा या बदल जायगा या बिलकुल ही नष्ट हो जायगा ।

इसलिए वर्तमान सामाजिक संदर्भ में, इस प्रकार की सभी पद्धतियों के भविष्य के सम्बन्ध में विचार करना निरर्थक है । आज की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि हमारे समाज की अन्तर्निहित एकता की भावना तथा उस एकता की महत्ता के प्रति जागरूकता को पुनर्जीवित किया जाय । अन्य सभी बातें फिर अपने आप ही ठीक हो जायेंगी ।

पण्डितजी ने यह विचार-शैली राष्ट्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों में लागू की । उदाहरण के लिए, आर्थिक पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए पंडितजी कहते हैं-

"परन्तु एक बात तो स्पष्ट है कि बहुत-सी पुरानी संस्थाओं के स्थान पर नयी संस्थायें आ जायेगी । इसका उन लोगों के लिए बुरा परिणाम होगा, जिनका उन पुरानी संस्थाओं में निजी हित निहित है । पुनर्निर्माण के प्रयत्नों से उन लोगों पर भी बुरा प्रभाव पड़ेगा जो स्वभाव से ही परिवर्तन के विरुद्ध रहते हैं । परन्तु रोग का उपचार औषधि से किया जाना चाहिए । व्यायाम तथा कठिन परिश्रम से ही शक्ति प्राप्त की जा सकती है । इसलिए हमें यथापूर्व स्थिति वाली मनोवृत्ति का त्याग करना पड़ेगा और एक नया युग लाना होगा । पुनर्निर्माण के हमारे प्रयत्नों पर न तो पूर्वधारणाओं का कोई असर पड़ना चाहिए और न हमें जो कुछ बपौती के रूप में मिला है, उसका बहिष्कार ही कर देना चाहिए । इसके विपरीत, हमें उन प्राचीन विचारधाराओं एवं परम्पराओं से चिपके रहने की कोई आवश्यकता नहीं, जिनकी अब कोई उपयोगिता नही रह गयी है ।"

पश्चिम की अन्धी नकल के विरोधी

गांधीवादी विचारधारा से उनका इस अर्थ में मतभेद था कि वे मशीनों के प्रयोग पर अधिक बल देते थे । परन्तु नेहरू दृष्टिकोण से भी उनका मेल नहीं खाता था । वे कहते थे कि पाश्चात्य देशों के औद्योगिक ढाँचे की पूरी तरह नकल करना भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल नही होगा । इसमें सन्देह नहीं कि चरखे के स्थान पर मशीनें आनी चाहिए, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि स्वचालित मशीनें आयें, जिससे बेकारी की समस्या और बढ़ जाय, पूरी क्षमता भर काम न हो, वर्तमान उत्पादन साधनों का पूर्ण उपयोग न हो सके, विदेशी मुद्रा तथा देशी पूंजी की कमी हो जाय तथा उपलब्ध कच्चे माल की

अत्यधिक बरबादी हो । हवा, पानी, भाप, तेल, गैस, बिजली तथा आणविक-शक्ति, जो परिचालन-शक्ति प्रदान कर सकती हैं, जैसी वस्तुओं को भी ध्यान में रखना चाहिए । व्यवस्था सम्बन्धी उपलब्ध कौशल का पूर्ण रूप से उपयोग किया जाना चाहिए । समाज की आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन किया जाना चाहिए । संक्षेप में, सातों 'M ' पर ध्यान दिया जाना चाहिए । इसके लिए हमें उपयुक्त डिजायन की मशीनें तैयार करनी चाहिए, उत्पादन के प्रचलित तरीकों में सुविधापूर्ण एवं उपयोगी परिवर्तन लाने चाहिए तथा एक भारतीय शिल्पविज्ञान का विकास करना चाहिए ।उद्योगों में उचित प्रकार की विभिन्नता वे बड़े उद्योगों पर अन्धाधुन्ध बल दिये जाने के विरुद्ध थे । आर्थिक व्यवस्था में सफलता लाता है अधिक उत्पादन । यह आवश्यक नहीं कि सब बड़े उद्योगों से ही उत्पादन हो । छोटे तथा मध्यम आकार के बहुत से उद्योगों से अधिक उत्पादन सम्भव हो सकता है । वे उत्पादन की उस संस्था के आकार को वरीयता देते थे, जो उत्पादन कार्य में भाग लेने वालों को इस योग्य बना सके कि वे उस संस्था के स्वामी बन जायें, उसे स्वयं चला सकें तथा उसकी स्वयं व्यवस्था कर सकें । श्रमिक को 'बचत मूल्य' की व्यवस्था में, जिसकी व्यवस्था पूंजीवादी पद्धति में सेवायोजक तथा समाजवादी व्यवस्था में सरकार करती है, प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने का सन्तोष होना चाहिए । वे उद्योगो में उचित प्रकार की विभिन्नता लाने के पक्षपाती थे । वे चाहते थे कि ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि पर आधारित छोटे उद्योग चालू किए जाएँ, जिनमें अपना देशी शिल्प-विज्ञान लगे तथा जिनमें बिजली की सहायता से उत्पादन की प्रक्रियाओं के विकेन्द्रीकरण पर अधिक बल हो और जिनमें घर, न कि कारखाना, उत्पादन का केन्द्र समझा जाय ।

जनशक्ति : पूंजी का महत्पूर्ण अंग

वे नगरों की, आवश्यकता से अधिक बढ़ने वाली जनसख्या की समस्या तथा गाँवों में बेकारी की समस्या एक साथ ही हल करना चाहते थे । उन्होंने पूंजी निर्माण की समस्या का विस्तार से विवेचन किया । परन्तु जिस बात में वे आज के अर्थशास्त्रियों से सर्वथा भिन्न थे, वह यह थी कि वे भारत की जनशक्ति को उसकी पूंजी का एक महत्वपूर्ण अंग मानते थे, जिसका आर्थिक पुनर्निर्माण में पूर्णतया उपयोग किया जाना चाहिए । योजना छोटी से छोटी क्षेत्रीय इकाई के स्तर पर बने उनका यह दृष्टिकोण ही उन्हें गांधीवादियों

तथा उग्र सुधारवादियों दोनों से ही अलग रखता है। नियोजन के सम्बन्ध में पंडितजी दोनों उग्र बातों-एक, योजना बने ही नहीं, और दो, केन्द्र के कड़े नियन्त्रण में योजनाबने- से भिन्न एक तीसरे मार्ग का अनुसरण करना चाहते थे। वे चाहते थे कि छोटी-से-छोटी क्षेत्रीय इकाई के स्तर पर योजना बने। इस प्रकार बनी हुई क्षेत्रीय योजनाओं का केन्द्र द्वारा उचित ढंग से समन्वय किया जाना चाहिए। यह स्मरणीय है कि इस मत का समर्थन डॉ० डी० आर० गाडगिल ने भी किया था, यद्यपि योजना-आयोग के उपाध्यक्ष बनने के बाद इस मामले में वे स्वतन्त्र नहीं थे।

निजी तथा सरकारी क्षेत्र परस्पर पूरक

अपने निजी काम में लगे रहने वाले व्यक्तियों के कार्य को पंडितजी बहुत अधिक महत्व देते थे। वे जनता के क्षेत्र के हिमायती थे और कहते थे कि निजी तथा सरकारी क्षेत्रों को एक दूसरे की कमी पूरी करनी चाहिए, क्योंकि वर्तमान परिस्थितियों में दोनों के विकास की पर्याप्त गुंजाइश है। उद्योगों के स्वामित्व के ढांचे के सम्बन्ध में उनका दृष्टिकोण बड़ा व्यावहारिक था। वे न तो यही चाहते थे कि बिल्कुल ही राष्ट्रीयकरण न हो और न यही कि पूर्णरूपेण राष्ट्रीयकरण हो। उद्योगों के स्वामित्व की अनेक प्रणालियाँ हैं। अलग-अलग उद्योगों का उनकी विशेषता का ध्यान रखते हुए, अलग-अलग ढंग का स्वामित्व होना चाहिए, न कि किसी पूर्व- निश्चित धारणा या परम्परा के आधार पर।

नियोजन में वरीयता क्रम

गाँवों के सम्बन्ध में वे यह चाहते थे कि किसान अपने खेत का मालिक हो, खेतिहर भूमि की सीमा निर्धारित हो तथा ऐसा करने से जो भूमि बचे वह तथा खेती करने योग्य परती भूमि का पुन: बटवारा हो। वे जन-सेवा करने वाली छोटी-छोटी सहकारी समितियों के समर्थक थे और सहकारी कृषि का विरोध वे इसलिए करते थे कि उसमें सहकारिता की भावना तो रहती नही। उन्होंने हमारे कृषि क्षेत्र को पुनर्जीवित करने के लिए एक व्यापक योजना तैयार की, क्योकि उनका ख्याल था कि नियोजन में उसे वह वरीयता नहीं मिली थी जो उसे मिलनी चाहिए थी। कृषि, छोटे उद्योग, तब बड़े उद्योग--वरीयता का यह क्रम होना चाहिए था।

विशिष्ट आर्थिक विचारधारा

अन्त में, यह कहा जा सकता है कि पंडितजी ने वह आर्थिक विचार- धारा प्रदान की, जो उनके पहले वाले तथा उनके साथ के राष्ट्रीय विचारकों द्वारा प्रस्तुत की गयी विचार धाराओं से भिन्न थी । जनसंघ के प्रतिद्वन्द्वियों के लिए इससे कठिनाई उत्पन्न हो गयी । वे पंडितजी की विचारधारा को उसके कार्यक्रम के आधार पर दक्षिणपन्थी नहीं कह सकते थे और न उन्हें वामपन्थी ही कहा जा सकता था, क्योंकि उसमें समाज- वाद की डीग नहीं हाँकी गयी थी । पण्डितजी इस प्रकार का वर्गीकरण भारतीय परिस्थितियों के लिए पूर्णतया असंगत मानते थे । वे भारतीय परिस्थितियों तथा परम्पराओं पर आधारित यथार्थवाद से मार्ग-दर्शन लेते थे । वे अव्यावहारिक दृष्टिकोण नहीं अपनाते थे । वे 'वैज्ञानिक समाजवाद' के विरुद्ध थे, क्योंकि अनिवार्यत: उसका परिणाम एक दल विशेष की तानाशाही होती थी । निश्चय ही वे शोषण एवं असमानतायें समाप्त करना चाहते थे । इस हद तक वे लोकतंत्रीय समाजवाद के विरुद्ध नही थे । परन्तु वे समाजवादी नहीं थे, क्योंकि वे जानते थे कि समाजवाद तब तक अपने घोषित लक्ष्य नहीं प्राप्त कर सकता, जब तक वह भौतिक- वाद के सिद्धान्त से चिपका रहेगा ।

भौतिकवाद के सिद्धान्त का परिणाम

फ्रांसीसी क्रान्ति ने पाश्चात्य देशों को स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व के अमूल्य सिद्धान्त प्रदान किये थे । परन्तु यह देखा गया कि जब स्वतन्त्रता का सिद्धान्त कार्यान्वित किया गया तो उसने घोर असमानतायें उत्पन्न कर दीं, समानता का सिद्धान्त जब साम्यवादी देशों द्वारा आचरित किया गया तो सभी प्रकार की स्वतन्त्रता समाप्त हो गयी, और बन्धुत्व का आदर्श एक स्वप्न ही बना रह गया। पाश्चात्य विचारधारा के भौतिक- वाद के ही कारण यह ऐतिहासिक असफलता आयी । भौतिकवाद का सिद्धान्त जीवन में भौतिकवादी मान्यताएँ ही उत्पन्न करेगा । यदि किसी के जीवन की मान्यतायें महज भौतिकवादी ही हों, तो कोई कारण नहीं कि वह अपने से कमजोर लोगों का शोषण करने से तनिक भी हिचके, बशर्ते कि ऐसा शोषण उसे भौतिक समृद्धि प्रदान करे । यह सच है कि आर्थिक समानता कानून द्वारा बलपूर्वक लायी जा सकती है । पंडितजी ने यह भी कहा था कि देश में व्यय करने के लिए उपलब्ध अधिकतम और

न्यूनतम आय के बीच २० और १ का अनुपात होना चाहिए । परन्तु यदि कोई पूर्णरूपेण भौतिकवादी हो, और जीवन में उसके लिए भौतिकवाद के अतिरिक्त अन्य कोई मान्यता न हो तो कोई कारण नहीं कि वह अपने वैयक्तिक क्षमताओं को विकसित करने के लिए अधिकाधिक कठिन परिश्रम करे, क्योंकि अधिक परिश्रम करने से उसके भौतिक लाभ में कोई विशेष अन्तर तो पड़ नहीं सकता, निर्वाह के लिए न्यूनतम आय तो निश्चित रूप से मिल ही जायेगी और उसके समक्ष गैर भौतिकवादी ऐसा कोई लक्ष्य है नही, जो उसे अधिक परिश्रम करने के लिए प्रेरित कर सके ।

भारतीय संस्कृति की समन्वित पद्धति

हिन्दू संस्कृति ने जीवन की भौतिकवादी तथा गैर भौतिकवादी मान्यताओं की एक ऐसी समन्वित पद्धति निकाली जो व्यक्ति के विकास के लिए प्रेरणा प्रदान करती थी । जैसा कि भलीभाँति ज्ञात है कि भारत की संस्कृति में भौतिकवादी पहलू की न तो उपेक्षा की गयी और न उसे आवश्यकता से अधिक बढ़ाया-चढ़ाया गया । फलत: प्रेरणा भी दो प्रकार की हुई-भौतिकवादी तथा गैर भौतिकवादी । भौतिकवादी में लाभ तथा भोग-विलास और गैर भौतिकवादी में मान्यताओं पर आधारित सामा- जिक सम्मान एवं प्रतिष्ठा । सभी को यह छूट थी कि वह जिस पथ का चाहे अनुसरण करे, परन्तु शर्त यह थी कि भोग-विलास और सामाजिक प्रतिष्ठा अनिवार्यत: उलटे अनुपात में होंगे । सामाजिक प्रतिष्ठा जितनी ही अधिक होगी, भोग-विलास उतने ही कम होंगे; और भोग-विलास जितने ही अधिक होंगे, सामाजिक प्रतिष्ठा उतनी ही कम होगी । समाज में पूर्ण समानता थी, इसलिए कि भोग-विलास तथा सामाजिक प्रतिष्ठा का योग प्रत्येक व्यक्ति के लिए बराबर था, यद्यपि भोग-विलास और सामाजिक प्रतिष्ठा अलग-अलग प्रत्येक व्यक्ति के मामले में भिन्न थे, और यह बात शत-प्रतिशत व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर थी । समाज के प्रत्येक व्यक्ति को प्रदान की गयी प्रेरणाओं के वृत्त की परिधि सदा ही एक जैसी अपरि- वर्तित रहती थी । परन्तु वृत्त में दोनों ही प्रकार की प्रेरणाएँ थी । यदि भौतिकवादी प्रेरणा का क्षेत्र विस्तृत हो जाता था, तो गैर भौतिकवादी का अपने आप ही कम हो जाता था, क्योंकि वृत्त तो अपरिवर्तनीय था । इसके विपरीत, यदि गैर-भौतिकवादी प्रेरणा का विस्तार कर दिया जाय तो भौतिकवादी का अपने आप ही कम

हो जायगा और ऐसा करना सम्बन्धित व्यक्तियों की इच्छा पर था । वास्तविक एवं स्थायी समानता लाने का यह आधार था, वैज्ञानिक हिन्दू तरीका । जीवन के चार लक्ष्यों की प्राप्ति की इस पद्धति ने, वास्तविक समानता के आधार पर समाज के ढाँचे के निर्माण में हिन्दुओं की सहायता की । पंडितजी को यह पूर्ण विश्वास था कि यदि समाजवाद कभी भी अपना घोषित लक्ष्य प्राप्त कर सका, तो ऐसा इसी भारतीय-पद्धति के आधार पर हो सकेगा ।

पंडित जी भारतीयता के केवल इसलिए समर्थक नहीं थे कि वह उनकी राष्ट्रीय बपौती थी । अपितु वे जानते थे कि मानवता के दोष, विशेष कर जगत के दोष, इसी भारतीय संस्कृति के आधार पर दूर किये जा सकते हैं । क्या पाश्चात्य संस्कृति व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा सामाजिक अनुशासन, दोनों को साथ-साथ स्वीकार करती है? पाश्चात्य देशों में भौतिकवादी स्वतन्त्रता शीघ्र ही 'उच्छृंखलता' में, तथा अनुशासन 'नियन्त्रण' में परिणत हो जाता है । पाश्चात्य देश बाह्य विभिन्नताओं के बीच वास्तविक एकता की कभी कल्पना ही नहीं कर सके, क्योंकि वे एकरूपता को ही एकता समझते थे । वे भारतीय सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के गुणों को कभी समझ ही नहीं सके, क्योंकि वे हमारे स्थायित्व को गति- हीनता समझते थे और अपने अस्थायित्व को गतिशीलता । कोई भी पाश्चात्य विचारक ऐसी एकात्मक प्रकार की सरकार की कल्पना ही नही कर सकता था जिसमें प्रशासकीय अधिकार अधिकाधिक विकेन्द्रीकृत हों, क्योंकि वे यह सोच ही नहीं सकते थे कि ऐसा कोई विकेन्द्रीय सरकारी- अधिकार स्थापित किया जा सकता है जो अत्यधिक नियन्त्रण न रखे तथा क्षेत्रीय औद्योगिक एवं नागरिक स्वशासन भी रहे; जो बातें भारतीय सामाजिक-व्यवस्था की विशेषता रही हैं । पाश्चात्य विचारक सोचते थे

कि राष्ट्रीय आत्म-निर्भरता तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की भावना दोनों साथ नहीं रह सकतीं । पाश्चात्य देशों में राष्ट्रीयता की भावना बिगड़कर 'साम्राज्यवाद' का रूप ले सकती है तथा अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना अपने देश के प्रति 'गद्दारी' का रूप ले सकती है । पंडितजी द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानववाद ने पाश्चात्य देशों की संकुचित विचारधाराओं की त्रुटियों, असन्तुलन तथा अनुपयोगिता को सिद्ध कर दिया है । वे अपने एकात्मवाद के आधार पर एक ऐसे विश्व-राज्य की कल्पना कर सके, जिसमें

विभिन्न राष्ट्रों की संस्कृतियाँ विकसित हों और एक ऐसा मानव- धर्म उत्पन्न हो, जिसमें सभी धर्मों का, यहाँ तक कि भौतिकवाद का भी समावेश हो ।

युगद्रष्टा

दीनदयालजी एक द्रष्टा थे । किसी काल चक्र की भाँति स्वयं को शताब्दियों के आर-पार ले जा सकते थे । वे प्राचीन द्रष्टाओं तथा आने वाली पीढ़ियों दोनों का ही सामना कर सकते थे । वे प्राचीन ऋषियीं की बुद्धिमत्ता के सहारे, आधुनिक समस्याओं का हल हमारे लिए निकाल देते थे । वे पहले से ही जान गये थे और पहचान गये थे कि सुदूर भविष्य में मानव के समक्ष कौन-सी समस्यायें आयेंगी और उनके लिए उन्हौंने सनातन धर्म के आधार पर अचूक उपचार बतलाये ।

कहा गया है कि अदूरदर्शी लोग नष्ट हो जाते हैं । बिना किसी द्रष्टा के कोई राष्ट्र पतित होकर अन्त में नष्ट हो जाता- है । परन्तु हमारा धर्म सनातन है, अर्थात् वह अनादि एवं अनन्त है । इसलिए भारत-माता कृपा करके प्रत्येक युग में एक ऐसे द्रष्टा को जन्म देती है जो गलत आदर्शों का अनुसरण करने वाली निराशायुक्त मानव-जाति को आशा का सन्देश दे । आधुनिक युग में पंडित दीनदयाल उपाध्याय त्रस्त-मानवता के लिए इस धर्म-भूमि की भेंट थे ।

---------------------------------इति-------------------------------